सुमन्त्र का अयोध्या को लौटना और सर्वत्र शोक देखना

चौपाई :

*** गुह सारथिहि फिरेउ पहुँचाई। बिरहु बिषादु बरनि नहिं जाई॥ चले अवध लेइ रथहि निषादा। होहिं छनहिं छन मगन बिषादा॥1॥

भावार्थ:

निषादराज गुह सारथी (सुमंत्रजी) को पहुँचाकर (विदा करके) लौटा। उसके विरह और दुःख का वर्णन नहीं किया जा सकता। वे चारों निषाद रथ लेकर अवध को चले। (सुमंत्र और घोड़ों को देख-देखकर) वे भी क्षण-क्षणभर विषाद में डूबे जाते थे॥1॥

*** सोच सुमंत्र बिकल दुख दीना। धिग जीवन रघुबीर बिहीना॥ रहिहि न अंतहुँ अधम सरीरू। जसु न लहेउ बिछुरत रघुबीरू॥2॥

भावार्थ:

व्याकुल और दुःख से दीन हुए सुमंत्रजी सोचते हैं कि श्री रघुवीर के बिना जीनाधिक्कार है। आखिर यह अधम शरीर रहेगा तो है ही नहीं। अभी श्री रामचन्द्रजी के बिछुड़ते ही छूटकर इसने यश (क्यों) नहीं ले लिया॥2॥

*** भए अजस अघ भाजन प्राना। कवन हेतु नहिं करत पयाना॥ अहह मंद मनु अवसर चूका। अजहुँ न हृदय होत दुइ टूका॥3॥

भावार्थ:

ये प्राण अपयश और पाप के भाँडे हो गए। अब ये किस कारण कूच नहीं करते (निकलते नहीं)? हाय! नीच मन (बड़ा अच्छा) मौका चूक गया। अब भी तो हृदय के दो टुकड़े नहीं हो जाते!॥3॥

*** मीजि हाथ सिरु धुनि पछिताई। मनहुँ कृपन धन रासि गवाँई॥ बिरिद बाँधि बर बीरु कहाई। चलेउ समर जनु सुभट पराई॥4॥

भावार्थ:

सुमंत्र हाथ मल-मलकर और सिर पीट-पीटकर पछताते हैं। मानो कोई कंजूस धन का खजाना खो बैठा हो। वे इस प्रकार चले मानो कोई बड़ा योद्धा वीर का बाना पहनकर और उत्तम शूरवीर कहलाकर युद्ध से भाग चला हो!॥4॥

दोहा :

*** बिप्र बिबेकी बेदबिद संमत साधु सुजाति। जिमि धोखें मदपान कर सचिव सोच तेहि भाँति॥144॥

भावार्थ:

जैसे कोई विवेकशील, वेद का ज्ञाता, साधुसम्मत आचरणों वाला और उत्तम जाति का (कुलीन)

ब्राह्मण धोखे से मदिरा पी ले और पीछे पछतावे, उसी प्रकार मंत्री सुमंत्र सोच कर रहे (पछता रहे) हैं॥144॥

चौपाई :

*** जिमि कुलीन तिय साधु सयानी। पतिदेवता करम मन बानी॥ रहै करम बस परिहरि नाहू। सचिव हृदयँ तिमि दारुन दाहू॥1॥

भावार्थ:

जैसे किसी उत्तम कुलवाली, साधु स्वाभाव की, समझदार और मन, वचन, कर्म से पति को ही देवता मानने वाली पतिव्रता स्त्री को भाग्यवश पति को छोड़कर (पति से अलग) रहना पड़े, उस समय उसके हृदय में जैसे भयानक संताप होता है, वैसे ही मंत्री के हृदय में हो रहा है॥1॥

*** लोचन सजल डीठि भइ थोरी। सुनइ न श्रवन बिकल मति भोरी॥ सूखहिं अधर लागि मुहँ लाटी। जिउ न जाइ उर अवधि कपाटी॥2॥

भावार्थ:

नेत्रों में जल भरा है, दृष्टि मंद हो गई है। कानों से सुनाई नहीं पड़ता, व्याकुल हुई बुद्धि बेठिकाने हो रही है। होठ सूख रहे हैं, मुँह में लाटी लग गई है, किन्तु (ये सब मृत्यु के लक्षण हो जाने पर भी) प्राण नहीं निकलते, क्योंकि हृदय में अवधि रूपी किवाड़ लगे हैं (अर्थात चौदह वर्ष बीत जाने पर भगवान फिर मिलेंगे, यही आशा रुकावट डाल रही है)॥2॥

*** बिबरन भयउ न जाइ निहारी। मारेसि मनहुँ पिता महतारी॥ हानि गलानि बिपुल मन ब्यापी। जमपुर पंथ सोच जिमि पापी॥3॥

भावार्थ:

सुमंत्रजी के मुख का रंग बदल गया है, जो देखा नहीं जाता। ऐसा मालूम होता है मानो इन्होंने माता-पिता को मार डाला हो। उनके मन में रामवियोग रूपी हानि की महान ग्लानि (पीड़ा) छा रही है, जैसे कोई पापी मनुष्य नरक को जाता हुआ रास्ते में सोच कर रहा हो॥3॥

*** बचनु न आव हृदयँ पछिताई। अवध काह मैं देखब जाई॥ राम रहित रथ देखिहि जोई। सकुचिहि मोहि बिलोकत सोई॥4॥

भावार्थ:

मुँह से वचन नहीं निकलते। हृदय में पछताते हैं कि मैं अयोध्या में जाकर क्या देखूँगा? श्री रामचन्द्रजी से शून्य रथ को जो भी देखेगा, वही मुझे देखने में संकोच करेगा (अर्थात मेरा मुँह नहीं देखना चाहेगा)॥4॥

दोहा :

*** धाइ पूँछिहहिं मोहि जब बिकल नगर नर नारि। उतरु देब मैं सबहि तब हृदयँ बज्रु बैठारि॥145॥

भावार्थ:

नगर के सब व्याकुल स्त्री-पुरुष जब दौड़कर मुझसे पूछेंगे, तब मैं हृदय पर वज्र रखकर सबको उत्तर दूँगा॥145॥

चौपाई :

*** पुछिहहिं दीन दुखित सब माता। कहब काह मैं तिन्हहि बिधाता। पूछिहि जबहिं लखन महतारी। कहिहउँ कवन सँदेस सुखारी॥1॥

भावार्थ:

जब दीन-दुःखी सब माताएँ पूछेंगी, तब हे विधाता! मैं उन्हें क्या कहूँगा? जब लक्ष्मणजी की माता मुझसे पूछेंगी, तब मैं उन्हें कौन सा सुखदायी सँदेसा कहूँगा?॥1॥

*** राम जननि जब आइहि धाई। सुमिरि बच्छु जिमि धेनु लवाई॥ पूँछत उतरु देब मैं तेही। गे बनु राम लखनु बैदेही॥2॥

भावार्थ:

श्री रामजी की माता जब इस प्रकार दौड़ी आवेंगी जैसे नई ब्यायी हुई गौ बछड़े को याद करके दौड़ी आती है, तब उनके पूछने पर मैं उन्हें यह उत्तर दूँगा कि श्री राम, लक्ष्मण, सीता वन को चले गए!॥2॥

*** जोई पूँछिहि तेहि ऊतरु देबा। जाइ अवध अब यहु सुखु लेबा॥ पूँछिहि जबहिं राउ दुख दीना। जिवनु जासु रघुनाथ अधीना॥3॥

भावार्थ:

जो भी पूछेगा उसे यही उत्तर देना पड़ेगा! हाय! अयोध्या जाकर अब मुझे यही सुख लेना है! जब दुःख से दीन महाराज, जिनका जीवन श्री रघुनाथजी के (दर्शन के) ही अधीन है, मुझसे पूछेंगे,॥3॥

*** देहउँ उतरु कौनु मुहु लाई। आयउँ कुसल कुअँर पहुँचाई॥ सुनत लखन सिय राम सँदेसू। तृन जिमि तनु परिहरिहि नरेसू॥4॥

भावार्थ:

तब मैं कौन सा मुँह लेकर उन्हें उत्तर दूँगा कि मैं राजकुमारों को कुशल पूर्वक पहुँचा आया हूँ लक्ष्मण, सीता और श्रीराम का समाचार सुनते ही महाराज तिनके की तरह शरीर को त्याग देंगे॥4॥

दोहा :

*** हृदउ न बिदरेउ पंक जिमि बिछुरत प्रीतमु नीरु। जानत हौं मोहि दीन्ह बिधि यहु जातना सरीरु॥146॥

भावार्थ:

प्रियतम (श्री रामजी) रूपी जल के बिछुड़ते ही मेरा हृदय कीचड़ की तरह फट नहीं गया, इससे मैं जानता हूँ कि विधाता ने मुझे यह 'यातना शरीर' ही दिया है (जो पापी जीवों को नरक भोगने के लिए मिलता है)॥146॥

चौपाई :

*** एहि बिधि करत पंथ पछितावा। तमसा तीर तुरत रथु आवा॥ बिदा किए करि बिनय निषादा। फिरे पायँ परि बिकल बिषादा॥1॥

भावार्थ:

सुमंत्र इस प्रकार मार्ग में पछतावा कर रहे थे, इतने में ही रथ तुरंत तमसा नदी के तट पर आ पहुँचा। मंत्री ने विनय करके चारों निषादों को विदा किया। वे विषाद से व्याकुल होते हुए सुमंत्र के पैरों पड़कर लौटे॥1॥

*** पैठत नगर सचिव सकुचाई। जनु मारेसि गुर बाँभन गाई॥ बैठि बिटप तर दिवसु गवाँवा। साँझ समय तब अवसरु पावा॥2॥

भावार्थ:

नगर में प्रवेश करते मंत्री (ग्लानि के कारण) ऐसे सकुचाते हैं, मानो गुरु, ब्राह्मण या गौ को मारकर आए हों। सारा दिन एक पेड़ के नीचे बैठकर बिताया। जब संध्या हुई तब मौका मिला॥2॥

*** अवध प्रबेसु कीन्ह अँधिआरें। पैठ भवन रथु राखि दुआरें॥ जिन्ह जिन्ह समाचार सुनि पाए। भूप द्वार रथु देखन आए॥3॥

भावार्थ:

अँधेरा होने पर उन्होंने अयोध्या में प्रवेश किया और रथ को दरवाजे पर खड़ा करके वे (चुपके से) महल में घुसे। जिन-जिन लोगों ने यह समाचार सुना पाया, वे सभी रथ देखने को राजद्वार पर आए॥3॥

*** रथु पहिचानि बिकल लखि घोरे। गरहिं गात जिमि आतप ओरे॥ नगर नारि नर ब्याकुल कैसें। निघटत नीर मीनगन जैसें॥4॥

भावार्थ:

रथ को पहचानकर और घोड़ों को व्याकुल देखकर उनके शरीर ऐसे गले जा रहे हैं (क्षीण हो रहे हैं) जैसे घाम में ओले! नगर के स्त्री-पुरुष कैसे व्याकुल हैं, जैसे जल के घटने पर मछलियाँ (व्याकुल होती हैं)॥4॥

दोहा :

*** सचिव आगमनु सुनत सबु बिकल भयउ रनिवासु। भवनु भयंकरु लाग तेहि मानहुँ प्रेत निवासु॥147॥

भावार्थ:

मंत्री का (अकेले ही) आना सुनकर सारा रनिवास व्याकुल हो गया। राजमहल उनको ऐसा भयानक लगा मानो प्रेतों का निवास स्थान (श्मशान) हो॥147॥

चौपाई :

*** अति आरति सब पूँछहिं रानी। उतरु न आव बिकल भइ बानी॥ सुनइ न श्रवन नयन नहिं

सूझा। कहहु कहाँ नृपु तेहि तेहि बूझा॥1॥
भावार्थ:
अत्यन्त आर्त होकर सब रानियाँ पूछती हैं, पर सुमंत्र को कुछ उत्तर नहीं आता, उनकी वाणी विकल हो गई (रुक गई) है। न कानों से सुनाई पड़ता है और न आँखों से कुछ सूझता है। वे जो भी सामने आता है उस-उससे पूछते हैं कहो, राजा कहाँ हैं ?॥1॥
*** दासिन्ह दीख सचिव बिकलाई। कौसल्या गृहँ गईं लवाई॥ जाइ सुमंत्र दीख कस राजा। अमिअ रहित जनु चंदु बिराजा॥2॥
भावार्थ:
दासियाँ मंत्री को व्याकुल देखकर उन्हें कौसल्याजी के महल में लिवा गईं। सुमंत्र ने जाकर वहाँ राजा को कैसा (बैठे) देखा मानो बिना अमृत का चन्द्रमा हो॥2॥
*** आसन सयन बिभूषन हीना। परेउ भूमितल निपट मलीना॥ लेइ उसासु सोच एहि भाँती। सुरपुर तें जनु खँसेउ जजाती॥3॥
भावार्थ:
राजा आसन, शय्या और आभूषणों से रहित बिलकुल मलिन (उदास) पृथ्वी पर पड़े हुए हैं। वे लंबी साँसें लेकर इस प्रकार सोच करते हैं, मानो राजा ययाति स्वर्ग से गिरकर सोच कर रहे हों॥3॥
*** लेत सोच भरि छिनु छिनु छाती। जनु जरि पंख परेउ संपाती॥ राम राम कह राम सनेही। पुनि कह राम लखन बैदेही॥4॥
भावार्थ:
राजा क्षण-क्षण में सोच से छाती भर लेते हैं। ऐसी विकल दशा है मानो (गीध राज जटायु का भाई) सम्पाती पंखों के जल जाने पर गिर पड़ा हो। राजा (बार-बार) 'राम, राम' 'हा स्नेही (प्यारे) राम!' कहते हैं, फिर 'हा राम, हा लक्ष्मण, हा जानकी' ऐसा कहने लगते हैं॥4॥

दशरथ-सुमन्त्र संवाद, दशरथ मरण

दोहा :
*** देखि सचिवँ जय जीव कहि कीन्हेउ दंड प्रनामु। सुनत उठेउ ब्याकुल नृपति कहु सुमंत्र कहँ रामु॥148॥
भावार्थ:
मंत्री ने देखकर 'जयजीव' कहकर दण्डवत् प्रणाम किया। सुनते ही राजा व्याकुल होकर उठे और बोले- सुमंत्र! कहो, राम कहाँ हैं ?॥148॥
चौपाई :

*** भूप सुमंत्रु लीन्ह उर लाई। बूड़त कछु अधार जनु पाई॥ सहित सनेह निकट बैठारी। पूँछत राउ नयन भरि बारी॥1॥

भावार्थ:

राजा ने सुमंत्र को हृदय से लगा लिया। मानो डूबते हुए आदमी को कुछ सहारा मिलगया हो। मंत्री को स्नेह के साथ पास बैठाकर नेत्रों में जल भरकर राजा पूछने लगे-॥1॥

*** राम कुसल कहु सखा सनेही। कहँ रघुनाथु लखनु बैदेही॥ आने फेरि कि बनहि सिधाए। सुनत सचिव लोचन जल छाए॥2॥

भावार्थ:

हे मेरे प्रेमी सखा! श्री राम की कुशल कहो। बताओ, श्री राम, लक्ष्मण और जानकी कहाँ हैं? उन्हें लौटा लाए हो कि वे वन को चले गए? यह सुनते ही मंत्री के नेत्रों में जल भर आया॥2॥

*** सोक बिकल पुनि पूँछ नरेसू। कहु सिय राम लखन संदेसू॥ राम रूप गुन सील सुभाऊ। सुमिरि सुमिरि उर सोचत राऊ॥3॥

भावार्थ:

शोक से व्याकुल होकर राजा फिर पूछने लगे- सीता, राम और लक्ष्मण का संदेसा तो कहो। श्री रामचन्द्रजी के रूप, गुण, शील और स्वभाव को याद कर-करके राजा हृदय में सोच करते हैं॥3॥

*** राउ सुनाइ दीन्ह बनबासू। सुनि मन भयउ न हरषु हराँसू॥ सो सुत बिछुरत गए न प्राना। को पापी बड़ मोहि समाना॥4॥

भावार्थ:

(और कहते हैं-) मैंने राजा होने की बात सुनाकर वनवास दे दिया, यह सुनकर भी जिस (राम) के मन में हर्ष और विषाद नहीं हुआ, ऐसे पुत्र के बिछुड़ने पर भी मेरे प्राण नहीं गए, तब मेरे समान बड़ा पापी कौन होगा ?॥4॥

दोहा :

*** सखा रामु सिय लखनु जहँ तहाँ मोहि पहुँचाउ। नाहिं त चाहत चलन अब प्रान कहउँ सतिभाउ॥149॥

भावार्थ:

हे सखा! श्री राम, जानकी और लक्ष्मण जहाँ हैं, मुझे भी वहीं पहुँचा दो। नहींतो मैं सत्य भाव से कहता हूँ कि मेरे प्राण अब चलना ही चाहते हैं॥149॥

चौपाई :

*** पुनि पुनि पूँछत मंत्रिहि राऊ। प्रियतम सुअन सँदेस सुनाऊ॥ करहि सखा सोइ बेगि उपाऊ। रामु लखनु सिय नयन देखाऊ॥1॥

भावार्थ:

राजा बार-बार मंत्री से पूछते हैं- मेरे प्रियतम पुत्रों का संदेसा सुनाओ। हे सखा! तुम तुरंत वही

उपाय करो जिससे श्री राम, लक्ष्मण और सीता को मुझे आँखों दिखा दो॥1॥

*** सचिव धीर धरि कह मृदु बानी। महाराज तुम्ह पंडित ग्यानी॥ बीर सुधीर धुरंधर देवा। साधु समाजु सदा तुम्ह सेवा॥2॥

भावार्थ:

मंत्री धीरज धरकर कोमल वाणी बोले- महाराज! आप पंडित और ज्ञानी हैं। हे देव! आप शूरवीर तथा उत्तम धैर्यवान पुरुषों में श्रेष्ठ हैं। आपने सदा साधुओं के समाज की सेवा की है॥2॥

*** जनम मरन सब दुख सुख भोगा। हानि लाभु प्रिय मिलन बियोगा॥ काल करम बस होहिं गोसाईं। बरबस राति दिवस की नाईं॥3॥

भावार्थ:

जन्म-मरण, सुख-दुःख के भोग, हानि-लाभ, प्यारों का मिलना-बिछुड़ना, ये सब हे स्वामी! काल और कर्म के अधीन रात और दिन की तरह बरबस होते रहते हैं॥3॥

*** सुख हरषहिं जड़ दुख बिलखाहीं। दोउ सम धीर धरहिं मन माहीं॥ धीरज धरहु बिबेकु बिचारी। छाड़िअ सोच सकल हितकारी॥4॥

भावार्थ:

मूर्ख लोग सुख में हर्षित होते और दुःख में रोते हैं, पर धीर पुरुष अपने मन में दोनों को समान समझते हैं। हे सबके हितकारी (रक्षक)! आप विवेक विचारकर धीरज धरिए और शोक का परित्याग कीजिए॥4॥

दोहा :

*** प्रथम बासु तमसा भयउ दूसर सुरसरि तीर। न्हाइ रहे जलपानु करि सिय समेत दोउ बीर॥150॥

भावार्थ:

श्री रामजी का पहला निवास (मुकाम) तमसा के तट पर हुआ, दूसरा गंगातीर पर। सीताजी सहित दोनों भाई उस दिन स्नान करके जल पीकर ही रहे॥150॥

चौपाई :

*** केवट कीन्हि बहुत सेवकाई। सो जामिनि सिंगरौर गवाँई॥ होत प्रात बट छीरु मगावा। जटा मुकुट निज सीस बनावा॥1॥

भावार्थ:

केवट (निषादराज) ने बहुत सेवा की। वह रात सिंगरौर (श्रृंगवेरपुर) में ही बिताई। दूसरे दिन सबेरा होते ही बड़ का दूध मँगवाया और उससे श्री राम-लक्ष्मण ने अपने सिरों पर जटाओं के मुकुट बनाए॥1॥

*** राम सखाँ तब नाव मगाई। प्रिया चढ़ाई चढ़े रघुराई॥ लखन बान धनु धरे बनाई। आपु चढ़े प्रभु आयसु पाई॥2॥

भावार्थ:

तब श्री रामचन्द्रजी के सखा निषादराज ने नाव मँगवाई। पहले प्रिया सीताजी को उस पर चढ़ाकर फिर श्री रघुनाथजी चढ़े। फिर लक्ष्मणजी ने धनुष-बाण सजाकर रखे और प्रभु श्री रामचन्द्रजी की आज्ञा पाकर स्वयं चढ़े॥2॥

*** बिकल बिलोकि मोहि रघुबीरा। बोले मधुर बचन धरि धीरा॥ तात प्रनामु तात सन कहेहू। बार बार पद पंकज गहेहू॥3॥

भावार्थ:

मुझे व्याकुल देखकर श्री रामचन्द्रजी धीरज धरकर मधुर वचन बोले- हे तात! पिताजी से मेरा प्रणाम कहना और मेरी ओर से बार-बार उनके चरण कमल पकड़ना॥3॥

*** करबि पायँ परि बिनय बहोरी। तात करिअ जनि चिंता मोरी॥ बन मग मंगल कुसल हमारें। कृपा अनुग्रह पुन्य तुम्हारें॥4॥

भावार्थ:

फिर पाँव पकड़कर विनती करना कि हे पिताजी! आप मेरी चिंता न कीजिए। आपकी कृपा, अनुग्रह और पुण्य से वन में और मार्ग में हमारा कुशल-मंगल होगा॥4॥ छन्द :

*** तुम्हरें अनुग्रह तात कानन जात सब सुखु पाइहौं। प्रतिपालि आयसु कुसल देखन पाय पुनि फिरि आइहौं॥ जननीं सकल परितोषि परि परि पायँ करि बिनती घनी। तुलसी करहु सोइ जतनु जेहिं कुसली रहहिं कोसलधनी॥

भावार्थ:

हे पिताजी! आपके अनुग्रह से मैं वन जाते हुए सब प्रकार का सुख पाऊँगा। आज्ञा का भलीभाँति पालन करके चरणों का दर्शन करने कुशल पूर्वक फिर लौट आऊँगा। सब माताओं के पैरों पड़-पड़कर उनका समाधान करके और उनसे बहुत विनती करके तुलसीदास कहते हैं तुम वही प्रयत्न करना, जिसमें कोसलपति पिताजी कुशल रहें। सोरठा :

*** गुर सन कहब सँदेसु बार बार पद पदुम गहि। करब सोइ उपदेसु जेहिं न सोच मोहि अवधपति॥151॥

भावार्थ:

बार-बार चरण कमलों को पकड़कर गुरु वशिष्ठजी से मेरा संदेसा कहना कि वे वही उपदेश दें, जिससे अवधपति पिताजी मेरा सोच न करें॥151॥

चौपाई :

*** पुरजन परिजन सकल निहोरी। तात सुनाएहु बिनती मोरी॥ सोइ सब भाँति मोर हितकारी। जातें रह नरनाहु सुखारी॥1॥

भावार्थ:

हे तात! सब पुरवासियों और कुटुम्बियों से निहोरा (अनुरोध) करके मेरी विनती सुनाना कि वही

मनुष्य मेरा सब प्रकार से हितकारी है, जिसकी चेष्टा से महाराज सुखी रहें॥1॥

*** कहब सँदेसु भरत के आएँ। नीति न तजिअ राजपदु पाएँ॥ पालेहु प्रजहि करम मन बानी। सेएहु मातु सकल सम जानी॥2॥

भावार्थ:

भरत के आने पर उनको मेरा संदेसा कहना कि राजा का पद पा जाने पर नीति न छोड़ देना, कर्म, वचन और मन से प्रजा का पालन करना और सब माताओं को समान जानकर उनकी सेवा करना॥2॥

*** ओर निबाहेहु भायप भाई। करि पितु मातु सुजन सेवकाई॥ तात भाँति तेहि राखब राऊ। सोच मोर जेहिं करै न काऊ॥3॥

भावार्थ:

और हे भाई! पिता, माता और स्वजनों की सेवा करके भाईपन को अंत तक निबाहना। हे तात! राजा (पिताजी) को उसी प्रकार से रखना जिससे वे कभी (किसी तरह भी) मेरा सोच न करें॥3॥

*** लखन कहे कछु बचन कठोरा। बरजि राम पुनि मोहि निहोरा॥ बार बार निज सपथ देवाई। कहबि न तात लखन लारिकाई॥4॥

भावार्थ:

लक्ष्मणजी ने कुछ कठोर वचन कहे, किन्तु श्री रामजी ने उन्हें बरजकर फिर मुझसे अनुरोधकिया और बार-बार अपनी सौगंध दिलाई (और कहा) हे तात! लक्ष्मण का लड़कपन वहाँ न कहना॥4॥

दोहा :

*** कहि प्रनामु कछु कहन लिय सिय भइ सिथिल सनेह। थकित बचन लोचन सजल पुलक पल्लवित देह॥152॥

भावार्थ:

प्रणाम कर सीताजी भी कुछ कहने लगी थीं, परन्तु स्नेहवश वे शिथिल हो गईं। उनकी वाणी रुक गई, नेत्रों में जल भर आया और शरीर रोमांच से व्याप्त हो गया॥152॥

चौपाई :

*** तेहि अवसर रघुबर रुख पाई। केवट पारहि नाव चलाई॥ रघुकुलतिलक चले एहि भाँती। देखउँ ठाढ़ कुलिस धरि छाती॥1॥

भावार्थ:

उसी समय श्री रामचन्द्रजी का रुख पाकर केवट ने पार जाने के लिए नाव चला दी। इस प्रकार रघुवंश तिलक श्री रामचन्द्रजी चल दिए और मैं छाती पर वज्र रखकर खड़ा-खड़ा देखता रहा॥1॥

*** मैं आपन किमि कहौं कलेसू। जिअत फिरेउँ लेइ राम सँदेसू॥ अस कहि सचिव बचन रहि गयऊ। हानि गलानि सोच बस भयऊ॥2॥

भावार्थ:

मैं अपने क्लेश को कैसे कहूँ, जो श्री रामजी का यह संदेसा लेकर जीता ही लौट आया! ऐसा कहकर मंत्री की वाणी रुक गई (वे चुप हो गए) और वे हानि की ग्लानि और सोच के वश हो गए॥2॥

*** सूत बचन सुनतहिं नरनाहू। परेउ धरनि उर दारुन दाहू॥ तलफत बिषम मोह मन मापा। माजा मनहुँ मीन कहुँ ब्यापा॥3॥

भावार्थ:

सारथी सुमंत्र के वचन सुनते ही राजा पृथ्वी पर गिर पड़े, उनके हृदय में भयानक जलन होने लगी। वे तड़पने लगे, उनका मन भीषण मोह से व्याकुल हो गया। मानो मछली को माँजा व्याप गया हो (पहली वर्षा का जल लग गया हो)॥3॥

*** करि बिलाप सब रोवहिं रानी। महा बिपति किमि जाइ बखानी॥ सुनि बिलाप दुखहू दुखु लागा। धीरजहू कर धीरजु भागा॥4॥

भावार्थ:

सब रानियाँ विलाप करके रो रही हैं। उस महान विपत्ति का कैसे वर्णन किया जाए? उस समय के विलाप को सुनकर दुःख को भी दुःख लगा और धीरज का भी धीरज भाग गया!॥4॥

दोहा :

*** भयउ कोलाहलु अवध अति सुनि नृप राउर सोरु। बिपुल बिहग बन परेउ निसि मानहुँ कुलिस कठोरु॥153॥

भावार्थ:

राजा के रावले (रनिवास) में (रोने का) शोर सुनकर अयोध्या भर में बड़ा भारी कुहराम मच गया! (ऐसा जान पड़ता था) मानो पक्षियों के विशाल वन में रात के समय कठोर वज्र गिरा हो॥153॥

चौपाई :

*** प्रान कंठगत भयउ भुआलू। मनि बिहीन जनु ब्याकुल ब्यालू॥ इंद्रीं सकल बिकल भइँ भारी। जनु सर सरसिज बनु बिनु बारी॥1॥

भावार्थ:

राजा के प्राण कंठ में आ गए। मानो मणि के बिना साँप व्याकुल (मरणासन्न) हो गया हो। इन्द्रियाँ सब बहुत ही विकल हो गईं मानो बिना जल के तालाब में कमलों का वन मुरझा गया हो॥1॥

*** कौसल्याँ नृपु दीख मलाना। रबिकुल रबि अँथयउ जियँ जाना॥ उर धरि धीर राम महतारी। बोली बचन समय अनुसारी॥2॥

भावार्थ:

कौसल्याजी ने राजा को बहुत दुःखी देखकर अपने हृदय में जान लिया कि अब सूर्यकुल कासूर्य अस्त हो चला! तब श्री रामचन्द्रजी की माता कौसल्या हृदय में धीरज धरकर समय के अनुकूल

वचन बोलीं-॥2॥

*** नाथ समुझि मन करिअ बिचारू। राम बियोग पयोधि अपारू॥ करनधार तुम्ह अवध जहाजू। चढ़ेउ सकल प्रिय पथिक समाजू॥3॥

भावार्थ:

हे नाथ! आप मन में समझ कर विचार कीजिए कि श्री रामचन्द्र का वियोग अपार समुद्र है। अयोध्या जहाज है और आप उसके कर्णधार (खेने वाले) हैं। सब प्रियजन (कुटुम्बी और प्रजा) ही यात्रियों का समाज है, जो इस जहाज पर चढ़ा हुआ है॥3॥

*** धीरजु धरिअ त पाइअ पारू। नाहिं त बूड़िहि सबु परिवारू॥ जौं जियँ धरिअ बिनय पिय मोरी। रामु लखनु सिय मिलहिं बहोरी॥4॥

भावार्थ:

आप धीरज धरिएगा, तो सब पार पहुँच जाएँगे। नहीं तो सारा परिवार डूब जाएगा। हेप्रिय स्वामी! यदि मेरी विनती हृदय में धारण कीजिएगा तो श्री राम, लक्ष्मण, सीता फिर आ मिलेंगे॥4॥

दोहा :

*** प्रिया बचन मृदु सुनत नृपु चितयउ आँखि उघारि। तलफत मीन मलीन जनु सींचत सीतल बारि॥154॥

भावार्थ:

प्रिय पत्नी कौसल्या के कोमल वचन सुनते हुए राजा ने आँखें खोलकर देखा मानो तड़पती हुई दीन मछली पर कोई शीतल जल छिड़क रहा हो॥154॥

चौपाई :

*** धरि धीरजु उठि बैठ भुआलू। कहु सुमंत्र कहँ राम कृपालू॥ कहाँ लखनु कहँ रामु सनेही। कहँ प्रिय पुत्रबधू बैदेही॥1॥

भावार्थ:

धीरज धरकर राजा उठ बैठे और बोले- सुमंत्र! कहो, कृपालु श्री राम कहाँ हैं? लक्ष्मण कहाँ हैं? स्नेही राम कहाँ हैं? और मेरी प्यारी बहू जानकी कहाँहै?॥1॥

*** बिलपत राउ बिकल बहु भाँती। भइ जुग सरिस सिराति न राती॥ तापस अंध साप सुधि आई। कौसल्यहि सब कथा सुनाई॥2॥

भावार्थ:

राजा व्याकुल होकर बहुत प्रकार से विलाप कर रहे हैं। वह रात युग के समान बड़ी होगई, बीतती ही नहीं। राजा को अंधे तपस्वी (श्रवणकुमार के पिता) के शाप की याद आ गई। उन्होंने सब कथा कौसल्या को कह सुनाई॥2॥

*** भयउ बिकल बरनत इतिहासा। राम रहित धिग जीवन आसा॥ सो तनु राखि करब मैं काहा। जेहिं न प्रेम पनु मोर निबाहा॥3॥

भावार्थ:

उस इतिहास का वर्णन करते-करते राजा व्याकुल हो गए और कहने लगे कि श्री राम के बिना जीने की आशा को धिक्कार है। मैं उस शरीर को रखकर क्या करूँगा, जिसने मेरा प्रेम का प्रण नहीं निबाहा?॥3॥

*** हा रघुनंदन प्रान पिरीते। तुम्ह बिनु जिअत बहुत दिन बीते॥ हा जानकी लखन हा रघुबर। हा पितु हित चित चातक जलधर॥4॥

भावार्थ:

हा रघुकुल को आनंद देने वाले मेरे प्राण प्यारे राम! तुम्हारे बिना जीते हुए मुझे बहुत दिन बीत गए। हा जानकी, लक्ष्मण! हा रघुवीर! हा पिता के चित्त रूपी चातक के हित करने वाले मेघ!॥4॥

दोहा :

*** राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम। तनु परिहरि रघुबर बिरहँ राउ गयउ सुरधाम॥155॥

भावार्थ:

राम-राम कहकर, फिर राम कहकर, फिर राम-राम कहकर और फिर राम कहकर राजा श्री राम के विरह में शरीर त्याग कर सुरलोक को सिधार गए॥155॥

चौपाई :

*** जिअन मरन फलु दसरथ पावा। अंड अनेक अमल जसु छावा॥ जिअत राम बिधु बदनु निहारा। राम बिरह करि मरनु सँवारा॥1॥

भावार्थ:

जीने और मरने का फल तो दशरथजी ने ही पाया, जिनका निर्मल यश अनेकों ब्रह्मांडों में छा गया। जीते जी तो श्री रामचन्द्रजी के चन्द्रमा के समान मुख को देखा और श्री राम के विरह को निमित्त बनाकर अपना मरण सुधार लिया॥1॥

*** सोक बिकल सब रोवहिं रानी। रूपु सीलु बलु तेजु बखानी॥ करहिं बिलाप अनेक प्रकारा। परहिं भूमितल बारहिं बारा॥2॥

भावार्थ:

सब रानियाँ शोक के मारे व्याकुल होकर रो रही हैं। वे राजा के रूप, शील, बल और तेज का बखान कर-करके अनेकों प्रकार से विलाप कर रही हैं और बार-बार धरती पर गिर-गिर पड़ती हैं॥2॥

*** बिलपहिं बिकल दास अरु दासी। घर घर रुदनु करहिं पुरबासी॥ अँथयउ आजु भानुकुल भानू। धरम अवधि गुन रूप निधानू॥3॥

भावार्थ:

दास-दासीगण व्याकुल होकर विलाप कर रहे हैं और नगर निवासी घर-घर रो रहे हैं। कहते हैं कि

आज धर्म की सीमा, गुण और रूप के भंडार सूर्यकुल के सूर्य अस्त हो गए॥3॥
*** गारीं सकल कैकइहि देहीं। नयन बिहीन कीन्ह जग जेहीं॥ एहि बिधि बिलपत रैनि बिहानी। आए सकल महामुनि ग्यानी॥4॥
भावार्थ:
सब कैकेयी को गालियाँ देते हैं, जिसने संसार भर को बिना नेत्रों का (अंधा) कर दिया! इस प्रकार विलाप करते रात बीत गई। प्रातःकाल सब बड़े-बड़े ज्ञानी मुनि आए॥4॥
दोहा :
*** तब बसिष्ठ मुनि समय सम कहि अनेक इतिहास। सोक नेवारेउ सबहि कर निज बिग्यान प्रकास॥156॥

भावार्थ:

तब वशिष्ठ मुनि ने समय के अनुकूल अनेक इतिहास कहकर अपने विज्ञान के प्रकाश से सबका शोक दूर किया॥156॥